दिसंबर १९९३ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्म-वाणी

कम्मुना वत्तति लोको, कम्मुना वत्तति पजा।
कम्मनिबन्धना सत्ता, रथस्साणीव यायतो ॥

सु. नि., वासेट्ठ-सुत्त - ६१.

कर्मसे संसार चलता है, कर्मसे प्रजा चलती है। प्राणी कर्मसे उसी प्रकार बँधे रहते हैं, जैसे कि चलते हुए रथ का चक्का आणि से यानि धुरे की कील से बँधा रहता है।

ऐसे थे भगवान !

असीम करुणानिधान !

[२]

सन् १९४७. देश के बँटवारे के दर्दनाक और शर्मनाक दिन। बँटे हुए दोनों भागों में बेरहम मानवी नरसंहार। एक भाग के बेशुमार लोगों का दूसरे भाग की ओर बेतहाशा पलायन। पुरखों की जिस धरती पर सदियों से रहते आये थे, उसे असुरक्षित पा कर भयसंकुल पलायन। अपना सब कुछ छोड़-छाड़ कर जान बचाने के लिए अधीर पलायन। परंतु इस पलायन में भी जान का खतरा था, सुरक्षा का सर्वथा अभाव था।

बिहार के एक बूढ़े मुसलमान ने इस महापलायन के दौरान घर-बार छोड़ कर भाग निकलने का निर्णय किया। पड़ोस के एक सज्जन ब्राह्मण ने उसे बचाये रखने का बहुत आश्वासन दिया, पर वह अत्यंत भयभीत था, भागने पर ही तुला था। पश्चिमी पंजाब की सीमा तक का रास्ता बहुत लंबा था, खतरों से भरा था। दयालु पड़ोसी को एक युक्ति सूझी। उसने मित्र के दाढ़ी, मूंछ और सिर का मुंडन किया, पीछे एक छोटी सी चोटी रखी, माथे पर तिलक लगाया, कंधे पर जनेऊ पहनाई, गले में तुलसी की माला डाली, पीठ पर राम-नामी दुपट्टा ओढ़ाया और उसे "हरे राम, हरे राम" का पाठ सिखा कर किसी दूर की स्टेशन पर पश्चिम की ओर जाने वाली गाड़ी में बैठा कर भारी मन से विदा किया।

आधी यात्रा पूरी होते-होते एक स्टेशन पर कुछ लोग हाथ में लाठी, भाला, छुरी, चाकू लिए हुए उस डिब्बे में चढ़ आये। भागने वालों की खोज थी उन्हें। बूढ़ा सहमी हुई भयभीत आंखों से उनकी ओर टुकुर-टुकुर देख रहा था। उसका कलेजा धक-धक कर रहा था। उन्हें बूढ़े पर संदेह हुआ।

उनमें से एक ने पूछा - कौन हो तुम?

बूढ़े ने हकलाते हुए उत्तर दिया - हिंदू।

- "क्या जात है तुम्हारी?"

बूढ़ा घबरा उठा। घिघियाकर बोला - बिरहमिन।

- "कौन बिरहमिन?"

बूढ़ा और घबराया। फिर पड़ोसी की जात याद आई, तो लड़खड़ाती जबान से बोला - गौड़ बिरहमिन।

- "कौन गौड़?"

अब क्या जवाब दे। बेचारे को पता नहीं कि गौड़ भी अनेक होते हैं। तो घबराहट के मारे मुँह से निकल गया "या अल्लाह! गौड़ में भी झोड़"।

इस खौफनाक माहौल की इस दर्दनाक लेकिन हास्योत्पादक घटना को आगे न बढ़ाते हुए हम इस घटना-सूत्र से इस तथ्य को समझें कि देश का एक बहुसंख्यक समाज किस प्रकार वर्ण और जाति के भेद-प्रभेदों में बँटा हुआ है। किसी ने कितना ठीक कहा -

ज्यों कवियों की बात में, बात बात में बात।
ज्यों केले के पात में, पात पात में पात।
ज्यों गदहे की लात में, लात लात में लात।
त्यों हिंदुओं की जात में, जात जात में जात॥

तथ्यों की गहराई में जायें तो यह स्पष्ट समझ में आयेगा कि जात-पांत और ऊंच-नीच का यह खतरनाक भेदभाव भरा सामाजिक विभाजन ही था, जिसने समय पाकर देश के इस दर्दनाक बँटवारे का रूप धारण किया और भविष्य के लिए भी यही खतरा लिए हुए है।

जात-पांत का कैसा उलझन भरा जाल। ऊंच-नीच का कैसा उत्पीड़न भरा जंजाल। समाज के सारे लोग परस्पर समान नहीं। जन्म के आधार पर चार वर्णों में बँटे हुए। एक ऊंचा तो दूसरा नीचा। किसी एक वर्ण के लोग भी परस्पर समान नहीं। जाति-जाति में बँटे हुए। कोई ऊंचा तो कोई नीचा। एक जाति के लोग भी परस्पर समान नहीं। उपजातियों में बँटे हुए। कोई ऊंचा तो कोई नीचा। अजीब गुंथन है, जटिल उलझन है। शायद यह सारा मायाजाल इसीलिए गूथा गया कि हर नीची जात का व्यक्ति ऊपर की ऊंची जात वालों के अनीतिपूर्ण शोषण का बोझ ढोते हुए भी यह संतोष करले कि मैं अमुक-अमुक जात वालों से ऊंचा हूं और इस अहं भरे मिथ्या संतोष के मारे इस विषैली व्यवस्था के प्रति कभी सिर न उठाये, कभी विद्रोह न करे। पर उनका क्या, जो सबसे नीचे हैं, अंत्यज हैं, अछूत हैं, अस्पृश्य हैं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी घिनौने कामों में लगाये गये हैं, सदियों से किस कदर कुचले गये हैं, वर्ण-विभाग और जात-पांत के ऊंच-नीच की अत्याचारिणी दुर्व्यवस्था में पिसते चले आ रहे हैं। समाज के तथाकथित कर्णधारों को उनकी कोई चिंता नहीं। उस ओर उनका ध्यान भी नही जाता। वह अपने उच्च वर्ण के गर्व-गुमान में ही अंधेपन का जीवन जीते हैं और उन दुखियारो को अपने भाग्य का रोना रोने के लिए छोड़ देते हैं।

आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व के भारत की भी यही दशा थी। सारा समाज इस घातक चातुर्वर्णी व्यवस्था का शिकार था। जहां वर्ण-विभाजन है, वहां जात-पांत का भेद-भाव स्वतः उपजेगा ही। विनाशकारिणी जात-पांत, ऊंच-नीच का वीभत्स भेद-भाव और मानवी गरिमा में कलंक-स्वरूप छूआछूत सारे समाज पर छाई हुई थी। समाज की इस दुरावस्था को देख कर उस महाकारुणिक का हृदय पिघल उठा। रोम-रोम से करुणा का उत्स फूट पड़ा। कर्म-सिद्धांतों पर स्थापित भारत का पुरातन, सनातन, शुद्ध धर्म जातिवाद के चंगुल में फँस कर कितनी गिरी हुई अधार्मिक अवस्था तक जा पहुँचा। उन्होंने इसे सुधारने का प्रयत्न शुरू किया। जन्म के आधार को लेकर बिगड़ती चली गई इस भयावह व्यवस्था को पुनः कर्म पर आधारित करने का उन्होंने भागीरथ सत्प्रयास शुरू किया। जन्म के मुकाबले कर्म की महत्ता को उजागर किया।

एक ओर उन्होंने इस विनाशकारी व्यवस्था द्वारा कुचले गये दीन-हीन लोगों को मिथ्या हीन-भाव की ग्रंथि से मुक्त करते हुए शुद्ध सद्धर्म के रास्ते लगाया और उनमें से अनेकों को परम विमुक्त अवस्था तक पहुँचा कर यह सिद्ध किया कि मनुष्य 'मनुष्य' है। वह किसी भी मां की कोख से जन्मा हो। सही शिक्षा और अनुकूल अवसर प्राप्त होने पर वह ऊंची से ऊंची अवस्था को प्राप्त कर सकता है और शुद्ध चित्त होकर स्वयं ब्राह्मण बन सकता है और सारे समाज के लिए परम पूज्य और प्रणम्य बन सकता है। दूसरी ओर उन्होंने जात्याभिमान में मदहोश ब्राह्मणों को धर्म की शुद्धता समझाई और उन्हें शुद्ध धर्म के मार्ग पर लाकर उनका कल्याण किया। उनके मन में जितनी करुणा समाज के निरीह, निर्दोष, पददलित लोगों के प्रति थी, उतनी ही करुणा उन भटके हुए भ्रांत ब्राह्मणों के प्रति थी, जो कि जन्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था को स्थापित करके औरों पर अत्याचार करते हुए अपनी भी असीम हानि ही कर रहे थे। धर्म का शुद्ध, सात्विक जीवन न जीते हुए भी अपने आपको महान मानते थे। शुद्ध, सात्विक जीवन जीने वाले औरों को हीन मान कर उनके प्रति घृणा प्रजनन करते थे और इस कारण स्वयं अपने सुधार से वंचित रह जाते थे, शुद्ध धर्म का जीवन जीने से वंचित रह जाते थे। ऐसे ही लोग समाज के मुखिया थे। उनका सुधार हुए बिना पूरे समाज का सुधार होना कठिन था। उन्हें पुरातन भारत के शुद्ध धर्म का बोध कराना आवश्यक जान कर उन पर असीम करुणा बरसाते हुए भगवान ने समय-समय पर देश के ब्राह्मणों को सन्मार्ग दिखाया और उनका कल्याण किया। समाज के बिगड़े हुए माहौल में उनकी धर्म-वाणी का यह मंगल-घोष गूंज उठा –

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो॥

–न जन्म से कोई वृषल यानि चांडाल होता है और न जन्म से ब्राह्मण। कर्म से वृषल होता है और कर्म से ब्राह्मण।

इस प्रकार उन्होंने जन्म और जाति के मुकाबले कर्म और सद्गुणों की महत्ता को स्थापित करने का परिश्रम-पुरुषार्थ किया। यह धर्म और अधर्म का युद्ध था। इस धर्मयुद्ध में प्रज्ञा और बोधि ही उनकी सबल भुजाएं थी। करुणा और मैत्री ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे। स्नेह और सद्भावना ही उनके संबल थे।

जन्मजात वर्णाश्रमी व्यवस्था का पक्ष लेने वाले स्वयं इस सच्चाई को भुलाये बैठे थे कि वे धर्म के विरोधी हैं और अधर्म के पक्षधर बने हुए हैं। वे यह मिथ्या दलील देते थे कि हम ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए ब्राह्मण हैं और भविष्य में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमारी संतति ब्राह्मण ही बनी रहेगी। यह जो ब्रह्मा के पांव से जन्मे हैं, वे शूद्र हैं और भविष्य में भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनकी संतति शूद्र ही बनी रहेगी। हम ब्राह्मण हैं, इसलिए महान हैं, पूज्य हैं, वरेण्य हैं और ये शूद्र हैं, इसलिए नीच हैं और अपूज्य ही नहीं, दुत्कारे जाने योग्य हैं। इसी झूठी दलील ने उन्हें अंधा बना दिया था। भगवान ने उनकी अंधी आंखों को धर्म की सच्चाई देख सकने के लिए ज्ञान की रोशनी देने का प्रयत्न किया। भगवान यह खूब समझते थे कि यह बावली मान्यता कायम रही, तो निश्चय ही धर्म का ह्रास होगा और अधर्म फैलेगा। इस व्यवस्था के चलते कोई क्यों धर्म धारण करेगा? जो यह मानता है कि मैं ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ ब्रह्म-पुत्र हूं, अतः स्वतः पवित्र हूं, पूज्य हूं और समाज में सदा पवित्र और पूज्य ही बना रहूंगा, वह धर्म धारण करके अपने चित्त को, अपने कर्मों को पवित्र करने की आवश्यकता को क्यों स्वीकारेगा और क्यों इसके लिए कोई प्रयत्न करेगा? जिसे यह घुट्टी दे दी गई कि तुम ब्रह्मा के पांव से जन्मे हो, अतः नीच हो, घृणित हो और समाज में सदा नीच और घृणित ही बने रहोगे, वह किसलिए धर्म धारण करके अपने चित्त को और अपने कर्मों को पवित्र करने की मेहनत करेगा? हजार पवित्र चित्त और पवित्र कर्मी हो जाने पर भी आखिरकार समाज में तो वह सदा नीच और घृणित ही बना रहने वाला है।

अधर्म को प्रोत्साहन देने वाली इसी मनोवृत्ति के फैलने पर लोग धर्म की चर्चा भले करें, उसका गुणगान भले गायें, पर धारण नहीं करेंगे। धारण नहीं करेंगे, तो धर्म का ह्रास ही होगा, अधर्म का विकास ही होगा, अमंगल ही अमंगल होगा।

ऐसी दूषित मान्यता बनी रही, तो आज भी अमंगल होगा, भविष्य में भी अमंगल ही अमंगल होगा। जब किसी ब्राह्मण के हृदय में यह भाव दृढ़ हो जायेगा कि **"पतितो पि द्विजो श्रेष्ठो"** , तो वह पतित होने से बचने के लिए धर्म धारण करने की आवश्यकता क्यों महसूस करेगा? क्यों शीलवान बनने का अभ्यास करेगा? क्यों मन को वश में करने का अभ्यास करेगा? क्यों मन को विकार-विमुक्त करने का अभ्यास करेगा? इस सारे तरद्दुद में वह क्यों पड़ेगा? इसके बिना भी वह श्रेष्ठ तो है ही, पूज्य तो है ही। इसके साथ-साथ जन्मजात श्रेष्ठ माना जाने के कारण वह अपना अहं ही बढ़ायेगा, चित्त को मैला करने का कर्म ही करता जाएगा।

इसी प्रकार जब किसी शूद्र कहे जाने वाले व्यक्ति को यह विश्वास दिला दिया जायेगा कि **"न च शूद्रो जितेन्द्रियः"** यानि जितेन्द्रिय हो जाने पर भी तू श्रेष्ठ नहीं माना जाएगा, नीच ही माना जाएगा, तो उसे जितेन्द्रिय बनने की क्या प्रेरणा जागेगी? वह शीलवान होने का, मन को वश में करने का और मन को विकार-विहीन करने का तरद्दुद क्यों करेगा? हर हालत में उसे नीच ही बने रहना है। इसके साथ-साथ जन्मजात नीच माना जाने के कारण उसकी हीनभाव की ग्रंथि प्रबल होती जाएगी। वह अपने चित्त को और अधिक मैला ही करता जाएगा।

शीलगुणहीन हो, तो भी जन्मजात विप्र होने के कारण पूज्य ही माना जाय और गुणसम्पन्न तथा ज्ञानप्रवीण होने पर भी जन्मजात शूद्र होने के कारण दुत्कारा ही जाय, **"ताड़न का अधिकारी"** ही माना जाय, यह धर्म-विरोधी वृत्ति समाज में न आज फैले और न भविष्य में। लोग धर्म धारण करने को ही पूरा-पूरा महत्व दें। जन्मजात वर्णव्यवस्था के चंगुल के बाहर आयें। इस लोक कल्याण की भावना से ही भगवान उस समय के लोगों को धर्म का सही स्वरूप समझाते रहे। ब्राह्मण हो या शूद्र, इस धर्म-विरोधी मान्यता में उलझ कर, अपने भीतर अहंभाव अथवा हीनभाव जगा कर अपनी हानि न करे। न आज करे, न भविष्य में करे। यही उनका मांगल्यमय मंतव्य था और यही उनकी कल्याणकारिणी शिक्षा थी, जिसे कि वे जीवन भर अत्यंत करुणा भरे चित्त से प्रकाशित करते रहे, प्रसारित करते रहे, ताकि सही माने में लोक मंगल हो, सही माने में लोक कल्याण हो।

कल्याणमित्र, स. ना. गो.